MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318

विद्यावार्ता®

Peer Reviewed International Refereed Research Journal

Issue-32, Vol-06 Oct. to Dec. 2019

Editor

Dr.Bapu G.Gholap

www.vidyawarta.com

Scanned with CamScanner

27) किन्नर समुदाय की व्यथा और दर्द: पोस्ट बॉक्स नं. २०३, नाला सोपारा में
निधि अग्रवाल, जिला— रायपुर (छ.ग.) ||113

28) महाकौशल में गोंडों का संघर्ष
डॉ., अंजनी कुमार झा, मोतिहारी(बिहार) ||116

29) स्त्रीवादी अवधारणाओं की व्याख्या : प्रभा खेतान की आत्मकथा अन्या से अनन्या
डॉ. अशोक वाघुळकर, आजरा ||129

30) भारत में ग्रामीण कृषि विकास में सूचना एवं तकनीकी प्रभाव एक अध्ययन
धीरेन्द्र चौहान & डॉ. एस. आर. अहीरे, इंदौर (म.प्र.) ||133

31) मतदान : मजबूत लोकतंत्र की पहचान
जय प्रकाश, खटीमा (उत्तराखण्ड) ||140

32) हिंदी मराठी भाषा के अनुवाद की शब्दगत समस्याएँ
डॉ. सूरज बाळासो चौगुले, जि. सांगली ||144

33) हिन्दी चित्रपट संगीत 'संक्षिप्त परिचय'
डॉ. सिमर प्रीत कौर, बद्दू साहिब, (हिमाचल प्रदेश) ||148

34) संस्कृत नाटकों में विवेचित आश्रम—व्यवस्था
हंसराज मीना, ब्यावर(राज.) ||150

35) 'साकेत' में विरह—वर्णन
मिनेश्वरी, रायपुर (छ.ग.) ||154

36) किशोरावस्था के विद्यार्थियों में व्यक्तित्व पर संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव
श्रीमति मनीषा मिश्रा & डॉ. आदित्य चतुर्वेदी, वर्धा ||156

37) भारत में जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक समस्याएं
डॉ. धर्मेन्द्र कुमार साहू, रीवा (म.प्र.) ||159

38) प्रभात त्रिपाठी की कहानियों में अभिव्यक्त विसंगतियाँ
डॉ. रेणु सक्सेना & कुमुदिनी भोई, रायपुर (छ.ग.) ||165

39) समकालीन हिंदी कविता में चेतना के विविध आयाम
संतोष नागरे, जि. बीड ||168

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

Scanned with CamScanner

MAH MUL/03051/2012
ISSN: 2319 9318
Vidyawarta®
Peer-Reviewed International Journal
Oct. To Dec. 2019
Issue-32, Vol-06

39

समकालीन हिंदी कविता में चेतना के विविध आयाम

संतोष नागरे
सहा. प्राध्यापक- हिंदी विभाग,
र.भ. अट्टल महाविद्यालय गेवराई, जि. बीड

****

समकालीन हिंदी कविता का आरम्भ 1960 के पश्चात होता है। समकालीन शब्द काल के साथ-साथ समय का भी बोध करता है, अत: समकालीन कविता का आधार समकालीन बोध ही है। समकालीन हिंदी कविता अपने समय की महत्वपूर्ण दस्तावेज है। समकालीन हिंदी कविता अपने समय से मुठभेड़ करती हुई नयी चेतना को जगाती है।

1960 के पश्चात आजादी से हुआ मोहभंग, भ्रष्ट राजनीति, आर्थिक-सामाजिक विषमता से नष्ट होता सामाजिक स्वास्थ्य, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, प्रांतवाद, वंशवाद, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, मँहगाई, औद्योगिकरण से बढ़ते नागरीकरण में दम तोड़ते गाँव, पूँजी के विस्तार से फैलता बाजार, उपभोक्तावादी संस्कृति के आक्रमण से टूटती परिवार एवं मूल्यव्यवस्था, प्राकृतिक असमतोल से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएँ, मीडिया की आभासी दुनिया में संवेदनाहीन होता मनुष्य आज के समय का यथार्थ है। समकालीन-हिंदी कविता अपने समसामयिक यथार्थ के साथ ही हाशिए पर रखे गये स्त्री, दलित, आदिवासी समूह की यातनाओं से उपजी चेतना को बयान करती है। अत: समकालीन हिंदी कविता में प्रतिरोध का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक प्रतिबध्दता अपने चरम रूप में पायी जाती है। स्वस्थ तथा खुशहाल समाज के लिए साहस के अभाव में मंद पड़ी हुई जन-चेतना को पुन: प्रज्वलित कर समकालीन हिंदी कविता उसके विविध आयामों को विस्तार देती है। सुशीला टाकभौरे इस संदर्भ में ठीक ही कहती है-

"चेतना है हमारे बीच / सदियों से
पर / साहस का अभाव है।"[1]

15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ और हमने प्रजातंत्र अपनाया। तंत्र बदल गया किन्तु शोषण पूर्ववत ही बना रहा। प्रजा को आजादी से जो उम्मीदें थी वह पूर्ण न होने से मोहभंग हुआ। 1960 के पश्चात इस मोहभंग की विकरालता ने समकालीन हिंदी कवियों को आहत किया। जिसे उन्होंने आक्रोश, विद्रोह, व्यंग्य और चौंकानेवाली पंक्तियों के माध्यम से दो टूक शब्दों में बयान किया। आजादी के बाद प्रजातंत्र भेड़ियातंत्र बनकर रह गया। जिसके कारण राजनीति में अराजकता बढ़ती गयी। वंशवाद, भाई-भतीजावाद, पूँजीपति एवं राजनेताओं की साँठ-गाँठ, राजनीति में पनपती आयाराम-गयाराम संस्कृति, अवसरवादिता, मूल्यहीनता, चुनाव प्रक्रिया एवं पैसों की हेरी-फेरी, सत्ता सुंदरी की प्राप्ति के लिए गिरगिट की तरह रंग बदलकर किये जानेवाले समझौते, बढ़ती मँहगाई, बेरोजगारी, भाषावाद, साम्प्रदायिकता की समस्याओं के चक्रव्यूह में फँसी प्रजा मिस्टर अभिमन्यु होकर रह गयी है। लालफीताशाही में दम तोड़ती योजनाएँ, 'खाओ और खाने दो' की लूट संस्कृति ने भ्रष्टाचार का नया सौंदर्यशास्त्र विकसित किया। भ्रष्ट पुलिस एवं न्यायव्यवस्था में रक्षक ही भक्षक बनकर घूम रहे हैं और न्यायव्यवस्था आँखों पर पट्टी बाँधे सिर्फ तमाशा देख रही है। आजादी के पश्चात बढ़ती हिंसा, सत्ता लिप्सा तथा स्वार्थ के चलते देश का चरित्र बदल गया। प्रजातंत्र में प्रजा और तंत्र के संबंधों की संवैधानिक व्याख्या तथा समकालीन राजनीति का शुध्दिकरण करते हुए उदय प्रकाश कहते हैं,-

"राज्यसत्ता / 'प्रजातंत्र' का प्रजापति है
और 'प्रजा' अगर 'तंत्र' से / टकराती है कभी
तो तंत्र की हिफ़ाजत में तैनात
बंदूक की नाल से / बोलती है राज्यसत्ता-
कि-सुनो मेरी प्यारी-प्यारी प्रजा
तुम्हें तंत्र के भीतर ही / प्रजा होने का हक़ है
पुलिस और फ़ौज / सचिवालय और न्यायालय
कर्फ्यू और गोली / प्रजा और तंत्र के संबंधों की
[illegible]"[2]

समकालीन राजनीति ने साहित्य और समाज जीवन को प्रभावित किया। कविता समाज को प्रतिबिम्बित ही नहीं करती अपितु समाज की संरचना बदलने में निरंतर चींटी-सी जुटी रहती है। निर्मला गर्ग कहती है,-

"समाज की संरचना बदलने के लिए
कविताएँ जुटी रहती हैं
चींटी सी।"[3]

Scanned with CamScanner

आजादी के पश्चात आम और खास आदमी के बीच की दूरी बढ़ती गयी। इस देश का बहुजीवी वर्ग रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा स्वास्थ जैसी प्राथमिक जरुरतों को पूर्ण करने में ही अपना जीवन खपा रहा है। एक ओर आम आदमी दो जून की रोटी के लिए मोहताज है वहीं दूसरी ओर पूँजीपति इस देश को चूना लगाकर दिन दहाड़े विदेश भाग रहे हैं। कृषिप्रधान देश में किसानों द्वारा की जा रही हड़तालें तथा आत्महत्याएँ इस देश की व्यथा-कथा को बयान करती है। समाज में बढ़ते भय, आतंक, बेईमानी, झूठ, फरेब, भ्रष्टाचार, अलगाववाद, आतंकवाद से सामाजिक स्वास्थ नष्ट हो रहा है। ऐसी स्थितियों में तथाकथित बुध्दिजीवी वर्ग अपनी सामाजिक प्रतिबध्दता को भूलकर चन्द सुविधाओं के लिए राजनेताओं तथा पूँजीपतियों के तलवें चाटने में ही व्यस्त है। समकालीन हिंदी कविता समाज के इस शोषित, पीड़ित, सर्वहारा वर्ग की पक्षधरता करती हुई उनकी खुशहाल जिन्दगी के लिए, उनकी छोटी-छोटी बातों को लेकर अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाते हुए लड़ाई लड़ने के लिए संकल्पबध्द दिखाई देती है। कुमार विकल कहते हैं,-

"मुझे लड़ना नहीं / किसी प्रतीक के लिए
किसी नाम के लिए / किसी बड़े प्रोग्राम के लिए
मुझे लड़नी है एक छोटी - सी लड़ाई
छोटे लोगों के लिए / छोटी बातों के लिए।"[4]

समकालीन हिंदी कविता सदियों से हाशिए पर रखे गये स्त्री, दलित तथा आदिवासी समूह की पीड़ा को बयान करती हुई उनके मानवाधिकार को लेकर अपनी लड़ाई लड़ रही है। दुनिया की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करनेवाली स्त्री मुख्यधारा से कटी हुई आज भी उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश है। पुत्र की आकांक्षा, कन्या भ्रूण हत्या, लिंग-भेद, बालविवाह, बहुविवाह, बलात्कार, देह शुध्दि, तीन तलाक, हलाला, देवदासी जैसी कुप्रथाएँ तथा अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के अभाव से घिरा स्त्री जीवन दुनिया की आधी आबादी की त्रासदी को बयान करता है। नारी को गूँगी गुड़िया बनाकर, उसकी मुक्ति के पर काटकर पुरुषप्रधान व्यवस्था ने उसे अपाहिज बना दिया। शिक्षा से आत्मनिर्भर बनी स्त्री पुरुषप्रधान व्यवस्था के इस छल और छद्म के विरुध्द आवाज उठाती है। आज वह उपभोग की वस्तु के रुप में नहीं अपितु मानव के रुप में जीने के लिए संघर्षरत है। इस संघर्ष के बल पर ही अपने जीवन को निखारकर वह आसमान की खुली छत पर मुक्त होकर उड़ना चाहती है। अपनी मुक्ति के रास्ते में बाधक बनी शोषणकारी पुरुषप्रधान व्यवस्था की विषाक्त जड़ पर प्रहार करती हुई रजनी अनुरागी कहती है-

"मैं समझ नहीं पाती / कहाँ तक फैली है
तुम्हारी विषाक्त जड़ें / कहीं तो निश्चित ही होगा इनका अंत
ठीक वहीं से शुरुआत करुँगी मैं।"[5]

स्त्री की तरह ही इस देश का दलित सदियों से वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था की शोषणचक्की में पिसता आ रहा है। वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था की भूलभूलैया में वह अपनी मुक्ति का रास्ता तलाश रहा है। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए सामाजिक समता प्रस्थापित करना दलित कविता की मूल संवेदना रही है। दलित कविता की पृष्ठभूमि बनाने में बुध्द, कबीर, रैदास, नामदेव, नानक आदि संतों के साथ महात्मा फुले, राजर्षि शाहू, डॉ.बाबासाहेब अम्बेडकर आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ.अम्बेडकर जी के सामाजिक पुनर्रचना सम्बन्धी विचार दलित साहित्य की रीढ़ है। डॉ.अम्बेडकर जी की 'शिक्षा', 'संगठन' और 'संघर्ष' की त्रिसूत्री पर दलित समाज आगे बढ़ रहा है। नकार, विरोध और विद्रोह दलित कविता के सौंदर्य को निखारते हैं। प्रश्नानुकूलता दलित कविता की अपनी विशेषता है। समकालीन हिंदी कविता जाति-पाति, उच-नीच, आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, जन्म-पुनर्जन्म, धार्मिक पाखण्ड, कर्मकांड, कर्मफल, छुआछूत का समर्थन करनेवाले धर्मग्रंथ तथा उसके समर्थकों को बेनकाबती है साथ ही मानवता के पथ पर चलते हुए समतामूलक समाजव्यवस्था की परिकल्पना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। डॉ.जयप्रकाश कर्दम समकालीन हिंदी कविता में दलित चेतना के महत्व को अधोरेखित करते हुए कहते हैं,- "दलित कविता समाज के सबसे निचले और पिछड़े वर्गों तक पहुँची है तथा उसकी अस्मिता से परिचित कराकर उसमें परिवर्तनकामी चेतना का संचार किया है। दलित कविता ने समाज की जड़ चेतना के तालाब में कंकड़ की तरह गिरकर उसको तरंगित करने का काम किया है। यही वह बिन्दु है जिसे किसी भी समाज की चेतना में बदलाव का प्रस्थान बिन्दु कहा जा सकता है। इसलिए दलित कविता समकालीन कविता में सार्थक और आवश्यक हस्तक्षेप है। दलित कविता के बिना समकालीन कविता पर कोई भी बात अधूरी होगी।"[6]

समकालीन हिंदी कविता शोषणकारी वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था को ध्वस्त कर समताधिष्ठित समाज का निर्माण चाहती है। शब्द चेतना के संवाहक होते हैं। अत: क्रांति हथियारों से नहीं शब्दों से ही आती है। मोहनदास नैमिशराय अपने शब्दों को आंदोलन की धार प्रदान कर सदियों से शोषण-मुक्ति के लिए संघर्षरत दलितों में चेतना के रंग भरते हुए कहते हैं,-

Scanned with CamScanner

"शब्दों के आंदोलन की धार / तुम्हें और तेज करनी होगी,
क्योंकि तुम्हारे जख्मों को / फिर से कुरेदा जा सकता है।
तुम्हारे पास केवल शब्द हैं / संघर्ष को जारी रखने के लिए
यही तुम्हारी ऊर्जा है।
तुम सामंत तो नहीं हो / न कोई माफिया
फिर तुम्हारे पास / हथियारबंद विरोह कहां से होंगे
तुम्हारे पास केवल शब्द है / उन्हीं को तुमने आंदोलन बनाया है
क्रांति हथियारों से नहीं / शब्दों से ही आती है।"[7]

समकालीन हिंदी कविता दलितों के साथ आदिवासियों की संघर्षगाथा को भी बयान करती है। आदिवासी इस देश के मूल निवासी हैं। जिनका अस्तित्व जंगल पर निर्भर होने से उन्हें 'जंगल के दावेदार' भी कहा जाता है। जो इस समय अपने अस्तित्व संकट से जूझ रहे हैं। विकास के नाम पर राजनेताओं तथा पूँजीपतियों द्वारा आदिवासियों को उनके जल, जमीन और जंगल से बेदखल कर विस्थापन के लिए विवश किया जा रहा है। आदिवासी सरोकारों के साथ जुड़े समकालीन हिंदी कवि जंगल उजाड़ने की नीतियों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए जल, जमीन और जंगल को बचाए रखने के लिए संघर्षरत है। डॉ. रमणिका गुप्ता इस संदर्भ में ठीक ही कहती है,-"दरअसल आदिवासी चेतना का लेखन जहाँ एक तरफ अपनी पीड़ा खुद कहने, अपने समाधान खुद ढूँढने की चेष्टा है, वहीं आज वह प्रस्थापितों (Established) द्वारा अपनी संस्कृति को नष्ट करने, अपने संसाधनों पर कब्जा जमाने के षड्यंत्रों के बरक्स प्रतिरोध की चेतना से भी लैस है।"[8] विकास के नाम पर आदिवासियों की आँखों में धूल झोंककर किये जा रहे विनाश की पोल खोलती हुई निर्मला पुतुल कहती है,-

"अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कल-कारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियाँ बसानी हैं
और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए
सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।"[9]

वैश्वीकरण से उपजी अर्थकेंद्रित उपभोक्तावादी संस्कृति में अर्थ का महत्व हद से अधिक बढ़ जाने से परिवार एवं मूल्यव्यवस्था टूट रही है। रिश्तों के बीच की नमी सूखती जा रही है। वृध्द जो कभी घर का सम्मान रहा करते थे वे आज उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश है। गाँव को उजाड़कर महानगरीय सभ्यता एवं संस्कृति फल-फूल रही है। जैसे-जैसे महानगरीय सभ्यता एवं संस्कृति की चकाचौंध बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे इंसानियत का अकाल पड़ता जा रहा है। शम्भुनाथ तिवारी महानगरीय जीवन के यथार्थ को बयान करते हैं,-

"नहीं है आदमी की अब कोई पहचान दिल्ली में
मिली है धूल में कितनों की ऊँची शान दिल्ली में।
तलाशों मत मियाँ रिश्ते, बहुत बेदर्द है गलियाँ
बड़ी मुश्किल से मिलते हैं यहाँ इंसान दिल्ली में।"[10]

महानगरों में प्रकृति एवं संस्कृति विकृति में तब्दील हो रही है। बदलता प्राकृतिक परिवेश और प्राकृतिक आपदाएँ आनेवाले खतरों की ओर संकेत दे रही हैं। आज धर्म श्रध्दा का नहीं बाजार का विषय होकर रह गया है। बाजार की विज्ञापन संस्कृति के मायाजाल तथा आभासी मीडिया के अंतरजाल ने मनुष्य के संवेदना जगत को झकझोरा है। संवाद के अभाव में मनुष्य अकेलेपन का शिकार होते जा रहा है। बाजारवादी संस्कृति में मनुष्य का चरित्र बाजारू बनकर न रह जाए इसकी चिंता समकालीन कवियों को सताती है। प्रो.कुमार कृष्ण इस बाजारवाद के समय के सच को बेनकाब करते हुए कहते हैं,- "आज हम जिस समय में जी रहे हैं वह संचार, आविष्कार, व्यापार तथा बाजार का समय है। यह मनुष्यता पर होने वाले प्रहार का समय है। यह ऐसा समय है, जहाँ दुनिया के बड़े देशों का अहंकार दिन-ब-दिन खूंखार होता जा रहा है। वो किसी क्षण भी इस खूबसूरत वसुन्धरा को राख के ढेर में बदल सकते हैं। यह ऐसा समय है जब दुराचार, व्यभिचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, शिष्टाचार, तिरस्कार और शिरोदार जैसे शब्द अपना परम्परागत अर्थ खो चुके हैं। यह समय प्यार का समय नहीं, बाजार का समय है।"[11]

बाजारवाद के इस दौर में मनुष्य संवेदनाहीन होकर मात्र मशीन का पुर्जा बनकर न रह जाए इसलिए समकालीन हिंदी कविता मनुष्य की संवेदनशीलता तथा मानवीय मूल्यों को बचाए रखने के लिए जुटी हुई दिखाई देती है। जिसतरह प्रकृति का हर उपादान अपना रंग तथा छाप छोड़ जाता है किन्तु मनुष्य अपना रंग तथा छाप छोड़ने में दिनों-दिन असमर्थ होते जा रहा है। मुरम वाली जमीन तलुवे को लाल कर अपना रंग छोड़ जाती है। वन से गुजरते हुए गहराती साँझ में वृक्ष पर रैन-बसेरा करनेवाले पक्षी अपने पंख छोड़ देते हैं। फूल अपनी महक पवन में तो मछली अपनी गंध पानी में छोड़ देती है। लेकिन 21 वीं शताब्दी का

Scanned with CamScanner

मनुष्य अपने मानुष होने की सुगंध कहीं छोड़ नहीं पा रहा है। मनुष्य की नष्ट हो रही संवेदनशीलता को बचाए रखने की जद्दोजहद समकालीन हिंदी कविता में देखने को मिलती है। एकांत श्रीवास्तव अपनी 'छाप' कविता में कहते हैं,-

"मुरम वाली जमीन पर नंगे पाँव
चलता हूँ / तो लथुपे लाल हो जाते हैं
धरती अपना रंग छोड़ देती है।
किसी वन से गुजरते हुए / गहराती साँझ
पक्षी जिस वृक्ष पर उतरते हैं/ अपने पंख छोड़ देते हैं।
फूल छोड़ देता है अपनी महक पवन में
पानी में मछली छोड़ देती है अपनी गंध
कैसा मैं मनुष्य हूँ
कि कहीं छोड़ नहीं पाता अपनी छाप
अपने मानुष होने की सुगंध / कहीं छोड़ नहीं पाता
धरती अपना रंग छोड़ देती है।"[12]

समकालीन हिंदी कविता चेतना संपन्न राष्ट्र निर्माण के लिए मानवीय मूल्य एवं संवेदनाओं को बचाए रखने के लिए प्रयासरत है। समकालीन हिंदी कविता के केंद्र में आम-आदमी है। अत: उसमें समकालीन जीवन की गंध पायी जाती है। समकालीन हिंदी कवियों ने सपाटबयानी, व्यंग्य, मिथक, फंतासी, बिम्ब, प्रतीक आदि शिल्पगत उपादानों को आधार बनाकर जनभावनाओं जनभाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया। अत: समकालीन हिंदी कविता को 'जनमानस की रामायण' भी कहा जाता है।

सारांश :-

समकालीन हिंदी कविता अपने समय से मुठभेड़ करती है। साथ ही अपनी समसामयिक स्थितियों से उपजी चेतना के विविध आयामों को दो टूक शब्दों में बयान करती है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1) सुशीला टाकभौरे, यह तुम भी जानो, पृ.23
2) उदयप्रकाश, कवि ने कहा, पृ.69
3) भरत प्रसाद, कविता की समकालीन संस्कृति, पृ.118
4) संपा.विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन 1950-2010, पृ.93
5) रजनी अनुरागी, बिना किसी भूमिका के, पृ.78
6) डॉ.जयप्रकाश कर्दम, दलित कविता : समकालीन परिदृश्य, पृ.12
7) संपा. राम चंद्र, प्रवीण कुमार, दलित चेतना की कविताएँ, पृ.69
8) संपा. रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, पृ.05
9) निर्मला पुतुल, बेघर सपने, पृ.40
10) www.kavitakosh.org Date : 25/01/2018- 4 PM
11) संपा. प्रो.श्रीराम शर्मा, समकालीन हिंदी साहित्य : विविध विमर्श, पृ.11
12) संपा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन 1950-2010, पृ.212

❑❑❑

Scanned with CamScanner